जैन जगत्-उत्पत्ति और आधुनिक विज्ञान

प्रो० जी० आर० जैन

"तारीफ उस खुदा की जिसने जहाँ बनाया"

उर्दू के किसी शायर ने उपरोक्त शब्द कहे हैं और यही भावना मानव जाति के लगभग सभी व्यक्तियों ने व्यक्त की है। अपने चारों ओर इस विचित्र संसार को देख कर हर मनुष्य के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस संसार को किसने बनाया और कैसे बनाया ? प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई बनाने वाला होता है, बिना बनाये कोई चीज नहीं बन सकती। इस भव्य संसार को बनाने और धारण करने वाली अनन्त शक्ति की धारक, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी कोई महान् शक्ति होगी, जिसे सर्वसाधारण ने खुदा, परमात्मा या भगवान का नाम दिया। किन्तु कुछ ज्ञानियों के मन में यह प्रश्न भी उठा कि वह महान् शक्ति कहाँ से आयी ? उस शक्ति को बनाने वाला कौन था ? उस शक्ति ने कहाँ बैठ कर ससार की रचना की ? कब रचना की और किस पदार्थ से रचना की, और वह पदार्थ कहाँ से आया ? (शून्य से तो पदार्थ की उत्पत्ति होती नहीं)। इन सब समस्याओं का हल जैन धर्म के आचार्यों ने किस प्रकार किया, यह विवेचना करना इस लेख का उद्देश्य है।

हिन्दू शास्त्रों में काल की गणना इस प्रकार की गयी है—

कलियुग	$4,32,000 \times 1 = 4,32,000$ वर्ष
द्वापरयुग	$4,32,000 \times 2 = 8,64,000$ वर्ष
त्रेतायुग	$4,32,000 \times 3 = 12,96,000$ वर्ष
सतयुग	$4,32,000 \times 4 = 17,28,000$ वर्ष

इस प्रकार 1 महायुग $= 4,32,000 \times 10 = 43,20,000$ वर्ष (टोटल)

71 महायुग $= 1$ मन्वन्तर $= 30,67,20,000$ वर्ष

14 मन्वन्तर $= 4,29,40,80,000$ वर्ष

प्रत्येक मन्वन्तर के प्रारम्भ में और उसके बीत जाने पर बाद में, सतयुग में जितने वर्ष होते हैं, उतने वर्षों तक अर्थात् $4,32,000 \times 4 = 17,28,000$ वर्षों तक पृथ्वी जल में डूबी रहती है। इसे आजकल के विज्ञान की भाषा में Glacial Epoch कहते हैं। अतएव 14 मन्वन्तरों में पृथ्वी 15 बार पानी में डूबी रही, अर्थात् $17,28,000 \times 15 = 2,59,20,000$ वर्षों तक पानी में डूबी रही। 14 मन्वन्तर के सम्पूर्ण काल को सामान्य कल्पकाल कहते हैं।

अतः एक सामान्य कल्पकाल के वर्षों की संख्या = 14 मन्वन्तरों की वर्ष-संख्या + पृथ्वी के 15 बार पानी में डूबे रहने की वर्ष-संख्या $= 4,29,40,80,000 + 2,59,20,000 = 4,32,00,00,000$ वर्ष (चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष)

$= 43,20,000$ (महायुग) $\times 1000$

अर्थात् एक सामान्य कल्पकाल एक हजार महायुगों के बराबर होता है। इसे ब्रह्मा का एक 'अहोरात्र' भी कहा जाता है। और इसी गणना से अनुसार ब्रह्मा की आयु 100 वर्ष है (एक वर्ष = 360 दिन)।

12 सामान्य कल्पकाल	= 1 देव-युग
2,000 देव-युग	= 1 ब्रह्म-अहोरात्र
360 ब्रह्म-अहोरात्र	= 1 ब्रह्म-वर्ष
43,20,000 ब्रह्म-वर्ष	= 1 ब्रह्म-चतुर्युगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2,000 ब्रह्म-चतुर्युगी	=1	विष्णु-अहोरात्र
360 विष्णु-अहोरात्र	=1	विष्णु-वर्ष
43,20,000 विष्णु-वर्ष	=1	विष्णु-चतुर्युगी
2,000 विष्णु-चतुर्युगी	=1	शिव-अहोरात्र
360 शिव-अहोरात्र	=1	शिव-वर्ष
43,20,000 शिव वर्ष	=1	शिव-चतुर्युगी
2,000 शिव-चतुर्युगी	=1	परमब्रह्म अहोरात्र
360 पर मब्रह्म अहोर	=1	परमब्रह्म-वर्ष
43,20,00 परमब्रह्म वर्ष	=1	परमब्रह्म चतुर्युगी
1,000 परमब्रह्म चतुर्युगी	=1	महाकल्प
1,000 महाकल्प	=1	महानकल्प
1,00,000 महान कल्प	=1	परमकल्प
1,00,000 परमकल्प	=1	ब्रह्म-कल्प

उपर्युक्त परिमाण के अनुकूल गणित फैलाने पर एक 'ब्रह्मकल्प' के वर्षों की संख्या 77 अंक प्रमाण है [22 अंकों पर 55 शून्य (बिन्दु) लगाने से जो संख्या बनती है वह संख्या 'ब्रह्मकल्प' के वर्षों की संख्या है] । शुरू के अंक इस प्रकार हैं —

4852102490441335701504

जैनाचार्यों के अनुसार काल की गणना निम्न प्रकार से की गयी है ।

100 वर्ष	=1	शताब्दी
84 सहस्र शताब्दी या 84 लाख वर्ष	=1	पूर्वांग
84 लाख पूर्वांग	=1	पूर्व
84 लाख पूर्व	=1	पर्वांग
84 लाख पर्वांग	=1	पर्व
84 लाख पर्व	=1	नियुतांग
84 लाख नियुतांग	=1	नियुत
84 लाख नियुत	=1	कुमुदांग
84 लाख कुमुदांग	=1	कुमुद
84 लाख कुमुद	=1	पद्मांग
84 लाख पद्मांग	=1	पद्म
84 लाख पद्म	=1	नलिनांग

(एक 'नलिनांग' की वर्ष-संख्या 22 अंक और 55 शून्य से मिल कर बनती है । 22 अंक इस प्रकार हैं—
1469170321634239709184)

84 लाख नलिनांग	=1	नलिन
84 लाख नलिन	=1	कमलांग
84 लाख कमलांग	=1	कमल
84 लाख कमल	=1	त्रुत्यांग
84 लाख त्रुत्यांग	=1	त्रुत्य
84 लाख त्रुत्य	=1	अटटांग
84 लाख अट्टांग	=1	अटट
84 लाख अटट	=1	अममांग
84 लाख अममांग	=1	अमम
84 लाख अमम	=1	ऊहांग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

84 लाख ऊहांग	=1	ऊह
84 लाख ऊह	=1	लतांग
84 लाख लतांग	=1	लता
84 लाख लता	=1	महालतांग
84 लाख महालतांग	=1	महालता
84 लाख महालता	=1	शिरःप्रकम्पित
84 लाख शिरः प्रकम्पित	=1	हस्त-प्रहेलिका
84 लाख हस्त-प्रहेलिका	=1	चर्चिक

1 'चर्चिक' में वर्षों की अंक-संख्या 201 है, जिसमें 56 अंक और 145 शून्य हैं। आजकल स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली गिनती की सीमा 10 शंख है, इसमें 19 अंक होते हैं।

हमारे मतानुसार एक कल्पकाल, एक अवसर्पिणी और एक उत्सर्पिणी काल को मिलाकर बनता है। अवसर्पिणी काल में धर्म, कर्म और आयु सब का क्रमशः ह्रास होता जाता है और उत्सर्पिणी काल में इसके विपरीत सब बातों की क्रमशः वृद्धि होती जाती है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी दोनों की वर्ष-संख्या बराबर है। उसको निकालने की विधि यह है—

413452630308203177749512192 के आगे 20 शून्य लगाने से जो संख्या बनती है, उतने वर्षों का एक व्यवहार-पल्योपमकाल होता है (1 व्यवहार पल्योपम काल के कुल अंकों की संख्या 47 है)।

असंख्यातकोटि व्यवहारपल्योपम काल	=1	उद्धारपल्योपम काल
असंख्यातकोटि उद्धारपल्योपम काल	=1	अद्धापल्योपम काल
10 कोड़ाकोड़ी (1 पद्म) व्यवहारपल्योपम काल	=1	व्यवहारसागरोपम काल
10 कोड़ाकोड़ी (1 पद्म) उद्धारपल्योपम काल	=1	उद्धारसागरोपम काल
10 कोड़ाकोड़ी (1 पद्म) अद्धापल्योपम काल	=1	अद्धासागरोपम काल
10 कोड़ाकोड़ी (1 पद्म) व्यवहारसागरोपम काल	=1	उत्सर्पिणी काल
10 कोड़ाकोड़ी (1 पद्म) व्यवहारसागरोपम काल	=1	अवसर्पिणी काल
20 कोड़ाकोड़ी (2 पद्म) व्यवहारसागरोपम काल	=1	अवसर्पिणी काल और 1 उत्सर्पिणी काल
	=1	कल्पकाल

उपर्युक्त मान से गणना करने पर 1 कल्पकाल के वर्षों की संख्या 82690526061640635549902438 4 (27 अंक) के आगे 50 शून्य लगाने से बनती है। (कुल अंक 77)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दुओं द्वारा की गयी कल्प की गणना और हमारी कल्प की गणना दोनों ही 77 अंक प्रमाण है। यद्यपि अंकों में कुछ विभिन्नता पायी जाती है, तथापि अंकों की 'स्थान-संख्या' 77 दोनों में समान होने से परस्पर कोई बड़ा अन्तर नहीं है।

यह तो हुई काल-गणना की बात। अब हम पहले हिन्दू मतानुसार सृष्टि-संवत् की ओर आते हैं। हिन्दुओं का सृष्टि-संवत् उनके संकल्प-मन्त्र में दिया हुआ है। संकल्प-मन्त्र इस प्रकार है—

"ॐ तत्सत्ब्रह्मणे द्वितीये परार्द्धे, श्री श्वेत वाराहकल्पे, वैवस्वत मन्वन्तरे, अष्टाविंशतितमे युगे, कलियुगे, कलिप्रथम चरणे इत्यादि।"

अर्थात्—मैं अमुक शुभ कार्य का कर्ता सत्ब्रह्म के दूसरे प्रहर में, श्वेत वाराह नामक कल्प में, वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें युग में, कलि के पहले चरण में (इत्यादि), अपने कार्यारम्भ का संकल्प करता हूँ।

चौदह मन्वन्तर होते हैं, जिनमें वैवस्वत नामक यह सातवाँ मन्वन्तर बीत रहा है। इसलिए छः मन्वन्तर बीत चुके हैं और एक मन्वन्तर 71 महायुग का होता है, जिनमें से 27 महायुग बीत चुके हैं। 28वें महायुग के तीन युग अर्थात् सतयुग, द्वापर और त्रेता के बीत जाने पर कलियुग के प्रथम चरण में संकल्प करता हूँ।

उपर्युक्त बातों से संकल्प का वर्ष, कल्प के आरम्भ से इस प्रकार मालूम हो जाता है —

बिना प्रलयकाल के मन्वन्तर का प्रमाण=30,67,20,000 वर्ष

क्योंकि छः मन्वन्तर बीत चुके हैं इसीलिए छः मन्वन्तरों का समय—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$= 30,67,20,000 \times 6 = 1,84,03,20,000$ वर्ष

प्रलय-काल 17,28,000 वर्ष का होता है। 6 मन्वन्तर बीत कर 7 वें मन्वन्तर के आरम्भ के पूर्व 7 प्रलय बीत चुके। इसीलिए प्रलय का कुल समय $= 17,28,000 \times 7 = 1,20,96,000$ वर्ष।

इसलिए $1,84,03,20,000 \times 1,20,96,000 = 1,85,24,16,000$ वर्षों के पश्चात् वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ हुआ।

एक मन्वन्तर 71 महायुगों का होता है, जिसके 27 महायुग बीत चुके हैं। एक महायुग 43,20,000 वर्ष का होता है। इसीलिए 27 महायुगों का समय $= 43,20,000 \times 27 = 11,66,40,000$ वर्ष।

अर्थात् $1,85,24,16,000 \times 11,66,40,000 = 1,96,90,56,000$ वर्ष सातवें मन्वन्तर के 28 वें महायुग के प्रारम्भ के पूर्व बीत चुके हैं।

अब 28वें महायुग के कलियुग का समय यह है—

सतयुग का मान $= 17,28\,000$ वर्ष
त्रेता का मान $= 12,96,000$ वर्ष
द्वापर का मान $= 8,64,000$ वर्ष

ये तीनों युग बीत चुके, इसलिए इन तीनों का योग $= 38,88,000$ वर्ष

अर्थात् $1,96,90,56,000 + 38,88,000 = 1,97,29,44,000$ वर्ष के बाद वैवस्वत मन्वन्तर के 28वें महायुग में कलियुग का प्रारम्भ हुआ।

भाद्रपद कृष्ण 13 रविवार को अर्द्धरात्रि के समय कलियुग की उत्पत्ति हुई थी।

ईस्वी सन् 1980 तक कलिगत वर्ष $= 5,081$

सबों का योगफल $= 1,97,29,44,000 + 5,081 = 1,97,29,49,081$ वर्ष

कल्प के प्रारम्भ से आज के दिन तक उपर्युक्त वर्ष बीत चुके हैं। इसे ही सृष्टि-संवत् कहा जाता है। मोटे शब्दों में वर्तमान कल्पकाल में लगभग दो अरब वर्ष सृष्टि को बने हो चुके हैं।

इंगलैंड के प्रसिद्ध भौतिकी विज्ञानी 'सर जेम्स जीन्स' ने भी अपनी पुस्तक 'The Mysterious Universe' में पृथ्वी की आयु 2 अरब वर्ष ही अनुमान की थी। उनकी गणना का आधार निम्न प्रकार था।

प्रारम्भ में जब हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिल कर जल रूप हुए तो वह जल शुद्ध जल था। उसमें किसी प्रकार के Salts (नमक) मिश्रित नहीं थे। संसार की हजारों नदियाँ प्रत्येक वर्ष समुद्रों में जो जल ले जाती हैं उसमें नमक मिश्रित होते हैं। पहले तो यह हिसाब लगाया गया कि संसार की समस्त नदियाँ समुद्र में प्रति वर्ष कितना नमक ले जाती हैं। फिर यह हिसाब लगाया गया कि संसार के समस्त समुद्रों में लवण की कितनी मात्रा है। ये दोनों बातें जानकर सहज ही यह हिसाब लगाया जा सकता है कि इतना नमक नदियाँ कितने वर्षों में लायी होंगी। उत्तर मिला—लगभग दो अरब वर्ष में।

किन्तु आजकल जो नयी खोजें हुई हैं, उनसे वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पृथ्वी की आयु दो अरब वर्ष नहीं, चार अरब साठ करोड़ वर्ष है जो ब्रह्मा के एक अहोरात्र (चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष) के बहुत सन्निकट है। जब चन्द्रमा पृथ्वी से अलग हुआ था तो उसकी गति भिन्न थी और यह गति अब घट गयी है और जिस गति से यह घट रही है, उसका हिसाब लगाने से सृष्टि की आयु चार अरब साठ करोड़ वर्ष निश्चित होती है।

जैन मान्यता के अनुसार यह लोक छः द्रव्यों का समुदाय है, अर्थात् यह ब्रह्माण्ड छः पदार्थों से बना है—जीव, अजीव (Matter and Energy), धर्म (Medium of Motion) वह माध्यम जिसमें होकर प्रकाश की लहरें एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती हैं, अधर्म (Medium of Rest) यानी Field of force, आकाश और काल (Time)। जैन ग्रन्थों में जहां जहां धर्म द्रव्य का उल्लेख आया है वहां-वहां धर्म शब्द का एक विशेष पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग किया गया है। यहां धर्म का अर्थ न तो कर्त्तव्य है और न उसका अभिप्राय सत्य, अहिंसा आदि सत्कार्यों से है। 'धर्म' शब्द का अर्थ है एक अदृश्य, अरूपी (Non-Material) माध्यम, जिसमें होकर जीवादि भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ एवं ऊर्जा गति करते हैं। यदि हमारे और तारों के बीच में यह माध्यम नहीं होता तो वहां से आने वाला प्रकाश, जो लहरों के रूप में धर्म द्रव्य के माध्यम से हम तक पहुँचता है, वह नहीं आ सकता था और ये सब तारे अदृश्य हो जाते।

यह माध्यम विश्व के कोने-कोने में और परमाणु के भीतर भरा पड़ा है। यदि यह द्रव्य नहीं होता, तो ब्रह्माण्ड में कहीं भी गति नजर नहीं आती। यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि किसी भी वस्तु के स्थायित्व के लिए उसकी शक्ति अविचल रहनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि उसकी शक्ति शनैः शनैः नष्ट होती जाये या बिखरती जाये, तो कालान्तर में उस वस्तु का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा। इस ब्रह्माण्ड को कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि इसका निर्माण आज से कुछ अरब वर्ष पहले किसी निश्चित तिथि पर हुआ। दूसरी मान्यता यह है कि यह ब्रह्माण्ड अनादि काल से ऐसा ही चला आ रहा है और ऐसा ही चलता रहेगा। आइन्सटाइन का विश्व-सम्बन्धी बेलन सिद्धान्त (Cylindrical Theory of the Universe) में इसी प्रकार की मान्यता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह ब्रह्माण्ड तीन दिशाओं (लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई) में सिलिण्डर (बेलन) की तरह सीमित है किन्तु समय की दिशा में अनन्त है। दूसरे शब्दों में, हमारा ब्रह्माण्ड अनन्त काल से एक सीमित पिण्ड की भांति विद्यमान है। आइन्सटाइन के मतानुसार यह ब्रह्माण्ड चार आयामों (Dimnsions) का पिण्ड (Four dimensional Universe) है। (तीन आयाम तो लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई के हैं तथा चौथा आयाम समय का है)।

वैसे तो अगर हम यह सोचने लगें कि यह आसमान कितना ऊँचा होगा, तो इसकी सीमा की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। हमारा मन कभी यह मानने को तैयार नहीं होगा कि कोई ऐसा स्थान भी है जिसके आगे आकाश नहीं है। जैन शास्त्रों में भी विश्व को अनादि-अनन्त बताया है और उसके दो विभाग कर दिये हैं – एक का नाम 'लोक' रखा है जिसमें सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि सभी पदार्थ गर्भित हैं और इसका आयतन 343 घनरज्जु है। आइन्सटाइन ने भी लोक का आयतन घन-मीलों में दिया है। एक मील लम्बे, एवं मील चौड़े और एक मील ऊँचे आकाशीय खण्ड को एक घनमील कहते हैं। इसी प्रकार एक रज्जु लम्बे, एक रज्जु चौड़े और एक रज्जु ऊँचे आकाशीय खण्ड को एक घनरज्जु कहते हैं। आइन्सटाइन ने ब्रह्माण्ड का आयतन 1037×10^{63} घनमील बताया है अर्थात् 1037 लिखकर उसके आगे 63 बिन्दु लगाने से जो संख्या बनेगी (कुल अंकों की संख्या 67), उतने घनमील विश्व का आयतन है। इसको 343 के साथ समीकरण करने पर एक रज्जु, 15 हजार शंखमील के बराबर होता है।

ब्रह्माण्ड के दूसरे भाग को 'अलोक' कहा गया है। लोक से परे, सीमा के बन्धनों से रहित अलोकाकाश लोक को चारों ओर से घेरे हुए है। यहां आकाश के सिवाय जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल किसी द्रव्य का अस्तित्व नहीं है।

लोक और अलोक के बीच की सीमा का निर्धारण करने वाला द्रव्य धर्म अर्थात् 'ईथर' है। चूँकि लोक की सीमा से परे ईथर का अभाव है इसलिए लोक में विद्यमान कोई भी जीव या पदार्थ अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में अर्थात् एनर्जी के रूप में भी लोक की सीमा से बाहर नहीं जा सकता। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि विश्व के समस्त पदार्थ और उसकी सम्पूर्ण शक्ति लोक के बाहर नहीं बिखर सकती और लोक अनादि काल तक स्थायी बना रहता है। यदि विश्व की शक्ति शनैः शनैः अनन्त आकाश में फैल जाती तो एक दिन इस लोक का अस्तित्व ही मिट जाता। इसी स्थायित्व को कायम रखने के लिए आइन्सटाइन ने 'कर्वेचर ऑफ स्पेस' की कल्पना की। इस मान्यता के अनुसार आकाश के जिस भाग में जितना अधिक पुद्गल द्रव्य (matter) विद्यमान रहता है, उस स्थान पर आकाश उतना ही अधिक गोल हो जाता है। इस कारण ब्रह्माण्ड की सीमाएँ गोलाईदार हैं। शक्ति जब ब्रह्माण्ड की गोल सीमाओं से टकराती है तब उसका परावर्तन हो जाता है और वह ब्रह्माण्ड से बाहर नहीं निकल पाती। इस प्रकार ब्रह्माण्ड की शक्ति अक्षुण्ण बनी रहती है और इस तरह वह अनन्त काल तक चलती रहती है।

पुद्गल की विद्यमानता से आकाश का गोल हो जाना एक ऐसे लोहे की गोली है जिसे निगलना आसान नहीं। आइन्सटाइन ने इस ब्रह्माण्ड को अनन्त काल तक स्थायी रूप देने के लिए ऐसी अनूठी कल्पना की। दूसरी ओर जैनाचार्यों ने इस मामले को यों कह कर हल कर दिया कि जिस माध्यम में हो कर वस्तुओं, जीवों और शक्ति का गमन होता है, लोक से परे वह है ही नहीं। यह बड़ी युक्तिसंगत और बुद्धिगम्य बात है। जिस प्रकार जल के अभाव में कोई मछली तालाब की सीमा से बाहर नहीं जा सकती, उसी प्रकार लोक से अलोक में शक्ति का गमन, ईथर के अभाव के कारण, नहीं हो सकता। जैन शास्त्रों का धर्मद्रव्य मैटर या एनर्जी नहीं है, किन्तु विज्ञान वाले ईथर को एक सूक्ष्म पौद्गलिक माध्यम मानते चले आ रहे है और अनेकानेक प्रयोगों द्वारा उसके पौद्गलिक अस्तित्व को सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु वे आज तक इस दिशा में सफल नहीं हो पाये हैं। हमारी दृष्टि से इसका एक-मात्र कारण यह है कि ईथर अरूपी पदार्थ है। कहीं तो वैज्ञानिकों ने ईथर को हवा से भी पतला माना है और कहीं स्टील से भी अधिक मजबूत। ऐसे परस्पर-विरोधी गुण वैज्ञानिकों के ईथर में पाये जाते हैं और चूँकि प्रयोगों के द्वारा वे उसके अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर सके हैं इसलिए आवश्यकतानुसार वें कभी उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हैं और कभी इन्कार। वास्तविकता यही है जो जैनागम में बतलायी गयी है कि ईथर एक अरूपी द्रव्य है जो ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण में समाया हुआ है और जिसमें से होकर जीव और पुद्गल का गमन होना है। यह ईथर द्रव्य प्रेरणात्मक नहीं है, यानी किसी जीव या पुद्गल को चलने की प्रेरणा नहीं करता वरन् स्वयं चलने वाले जीव या पुद्गल की गति में सहायक हो जाता है, जैसे इंजन के चलने में रेल की पटरी (लाइनें) सहायक हैं। इस द्रव्य के बिना किसी द्रव्य की गति सम्भव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? विज्ञान के क्षेत्र में इस सम्बन्ध में मुख्यतः दो सिद्धान्त हैं—(1) महान् आकस्मिक विस्फोट का सिद्धान्त (Big Bang Theory) और (2) सतत उत्पत्ति का सिद्धान्त (Continuous Creation Theory)।

महान् आकस्मिक विस्फोट का सिद्धान्त, जिसे सन् 1922 में रूसी वैज्ञानिक डॉ० फ्रैडमैन ने जन्म दिया, हिन्दुओं की कल्पना से मेल खाता है। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड का जन्म हिरण्यगर्भ (सोने का अण्डे) से हुआ। सोना धातुओं में सबसे भारी है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिस पदार्थ से इस विश्व की रचना हुई है वह बहुत भारी था। उसका घनत्व सबसे अधिक था। फैलते-फैलते यही अण्डा विश्वरूप हो गया।

अमेरिका के प्रोफेसर चन्द्रशेखर ने गणित के आधार पर बतलाया है कि विश्व-रचना के प्रारम्भ में पदार्थ का घनत्व लगभग 160 टन प्रति घनइंच था। जबकि एक घनइंच सोने का तोल केवल पांच छटांक होता है। दूसरे शब्दों में वह पदार्थ अत्यन्त भारी था।

आजकल के वैज्ञानिक इस प्रश्न पर दो समुदायों में बँटे हुए हैं—एक वे हैं जिनका मत है कि यह ब्रह्माण्ड अनादि काल से अपरिवर्तित रूप में चला आ रहा है और दूसरे वे हैं जो यह विश्वास करते हैं कि आज से अनुमानतः 10 या 20 अरब वर्ष पूर्व एक महान् आकस्मिक विस्फोट के द्वारा इस विश्व का जन्म हुआ। हाइड्रोजन गैस का एक बहुत बड़ा धधकता हुआ बबूला अकस्मात् फट गया और उसका सारा पदार्थ चारों दिशाओं में दूर-दूर तक छिटक पड़ा और आज भी वह पदार्थ हम से दूर जाता हुआ दिखाई दे रहा है। ब्रह्माण्ड की सीमा पर जो क्वैसर नाम के तारक पिण्डों की खोज हुई है जो सूर्य से भी 10 करोड़ गुने अधिक चमकीले हैं, वे हमसे इतनी तेजी से दूर भागे जा रहे हैं कि इनसे आकस्मिक विस्फोट के सिद्धान्त की पुष्टि होती है (भागने की गति 70,000 से 1,50,000 मील प्रति सैकिण्ड है। किन्तु भागने की यह क्रिया भी एक दिन समाप्त हो जायेगी और यह सारा पदार्थ पुनः पीछे की ओर गिर कर एक स्थान पर एकत्रित हो जायेगा और फिर विस्फोट की पुनरावृत्ति होगी। इस सम्पूर्ण क्रिया में 80 अरब वर्ष लगेंगे और इस प्रकार के विस्फोट अनन्त काल तक होते रहेंगे। जैनाचार्यों ने इसे परिणमन की क्रिया कहा है। इसमें षट्गुणी हानि और वृद्धि होती रहती है।

दूसरा प्रमुख सिद्धान्त सतत उत्पत्ति का सिद्धान्त है, जिसे अपरिवर्तनशील अवस्था का सिद्धान्त भी कहा जाता है। इसके अनुसार यह ब्रह्माण्ड एक घास के खेत के समान है जहाँ पुराने घास के तिनके मरते रहते हैं और उनके स्थान पर नये तिनके जन्म लेते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि घास के खेत की आकृति सदा एक-सी बनी रहती है। यह सिद्धान्त जैन धर्म के सिद्धान्त से अधिक मेल खाता है। जिसके अनुसार इस जगत् का न तो कोई निर्माण करने वाला है और न किसी काल-विशेष में इसका जन्म हुआ। यह अनादि काल से ऐसा ही चला आ रहा है और अनन्त काल तक ऐसा ही चलता रहेगा। हमारी मान्यता गीता की उस मान्यता के अनुकूल है, जिसमें कहा गया है—

"न कर्तृत्वं न कर्माणि, न लोकस्य सृजति प्रभुः।"

एम० आई० टी० (अमरीका) के डॉ० फिलिप मोरीसन इस सम्बन्ध में कहते हैं—"ज्योतिषियों ने जो अब तक परीक्षण किये हैं उनके आधार पर यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि खगोल-उत्पत्ति के भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में से कौन-सा सिद्धान्त सही है। इस समय इनमें से कोई सा भी सिद्धान्त सम्पूर्ण रूप से वस्तुस्थिति का वर्णन नहीं करता।"

इस सम्बन्ध में हम संसार के महान् वैज्ञानिक प्रोफेसर आइन्सटाइन का सिद्धान्त ऊपर वर्णन कर चुके हैं, जिसके अनुसार यह संसार अनादि एवं अनन्त सिद्ध होता है।

जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लेख का निष्कर्ष यह निकलता है कि महान आकस्मिक विस्फोट-सिद्धान्त के अनुसार इस ब्रह्माण्ड का आरम्भ एक ऐसे विस्फोट के रूप में हुआ, जैसा आतिशबाजी के अनार में होता है। अनार का विस्फोट तो केवल एक ही दिशा में होता हैं। यह विस्फोट सब दिशाओं में हुआ और जिस प्रकार विस्फोट के पदार्थ पुनः उसी बिन्दु की ओर गिर पड़ते हैं, इस विस्फोट में भी ऐसा ही होगा। सारा ब्रह्माण्ड पुनः घण्डे के रूप में संकुचित हो जायेगा। पुनः विस्फोट होगा और इस प्रकार की पुनरावृत्ति होती रहेगी। इस सिद्धान्त के अनुसार भी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति शून्य में से नहीं हुई। पदार्थ का रूप चाहे जो रहा हो, इसका अस्तित्व अनादि-अनन्त है।

दूसरा सिद्धान्त सतत उत्पत्ति का है। इसकी तो यह मान्यता है ही कि ब्रह्माण्ड-रूपी चमन अनादि काल से ऐसा ही चला आ रहा है और चलता रहेगा। इस सिद्धान्त को आइन्सटाइन का आशीर्वाद भी प्राप्त है। अतएव जगत्-उत्पत्ति के सम्बन्ध में जैनाचार्यों का सिद्धान्त सोलहों आने पूरा उतरता है।

इस लेख की समाप्ति हम यह कह कर रहे हैं कि 343 घनरज्जु के इस लोक में इलैक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन आदि मूलभूत कणों की संख्या 10^{72} से लेकर 10^{75} तक है, अर्थात् 1 का अंक लिखकर 72 या 75 बिन्दु लगाने से यह संख्या बनेगी।

अणोरणीयान् महतो महीयान्!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org